बगैर शेड वाले बल्ब की रोशनी

रमेश बक्षी

बगैर शेड वाले बल्ब की रोशनी

जब से टेबिल-लैंप की बात को लेकर झगड़ा हुआ है मैं उनसे कम ही बोलता हूँ फिर भी कोई दास-साढ़े दस का समय हुआ होगा कि मैंने कहा, 'चलो न भाई।'

https://www.hindiadda.com/bagair-shed-vale-balb-ki-roshani/

वे तीनों अपने कामों में लगे थे - पगड़ी बाँधने में, जूते पर पॉलिश करने में, कपड़ों पर ब्रश करने में। मेरी ओर देख पूछा, 'कहाँ?'

'कहाँ?...!' मैं चिढ़ गया इस प्रश्न से, 'कहाँ क्या? खाना खाने नहीं चलना है?'

'खाना खाने...!' उन तीनों ने मेरे इस कहे को ऐसे कुछ दुहराया कि उनका कहा प्रश्नवाचक बनते-बनते आश्चर्यजनक बन गया। वे एक-दूसरे को गहरी दृष्टि से देखने लगे, फिर हँस पड़े। मुझे यह सब बड़ा मूर्खतापूर्ण लगा। हाथ की किताब जोर से बंद की, जोर से उसे पटका और बोला, 'जब भी खाने की बात करता हूँ तुम लोग इस तरह क्यों देखने लगते हो मेरी तरफ!'

'देखा, है न वही बात।' पगड़ी बाँधकर वह बोला।

'बात? कौन-सी बात?' मैंने पूछा, 'खाने में क्या बात है? भूख लगती है इसीलिए खाना खाते हैं।'

'तो मैं कहाँ कह रहा हूँ कि तुम बगैर भूख लगे ही खाना खाते हो।' वह पगड़ी को ठीक करता पिनें खोंस रहा था।

'चुप भी करो।' मैं जोर से बोला और जाने को हुआ।

वह चमकते जूते को बड़े प्यार से निहार रहा था, निहारते बोला, 'आज क्या सवेरे जगते-से ही तुम खाना खाने जाने की तैयारी करने लगे थे?'

'तैयारी? और खाना खाने जाने की?' मैं कुछ कदम आगे बढ़ा था पर लौट आया, 'क्या रोज हम लोग ऐसा करते हैं?' मैंने उसकी कॉलर पकड़ ली, 'यहाँ परदेश में अकेले पड़े हैं। यह मकान मिल गया तो यारों ने यहाँ अड्डा जमा मिला। सुबह नौकरी पर जाते हैं। दोपहर और रात को होटल में खाना खाने जाने के लिए कोई तैयारी करता हो?' उसने झटके से अपनी कॉलर छुड़ा ली, बोला, 'यही कह रहा था कि तैयारी नहीं की जाती है। टाई बाँध लो तो खाना खाने में जरा तकलीफ होती है।'

'अच्छा-आ...आ।' उसके इस व्यंग्य से मेरा खून जलने लगा, 'तुम्हें मेरी टाई इतनी बुरी लगती है तो यह लो।' मैंने एक झटके से टाई खोलकर अपने बिस्तर पर फेंक दी। मैं जानता हूँ कि मैंने टेबिल-लैंप पर से शेड नहीं हटाया, इसी कारण ये तीनों नाराज हैं। तभी ब्रश वाला अपने कपड़ों पर ब्रश कर चुका और इस पॉलिश वाले को एक धौल जमाई उसने, 'तुझे क्या करना कि कोई टाई बाँधता है या कोई खाना खाने जाते समय

और कोई तैयारी करता है, जिसकी जैसी इच्छा वह वैसा ही करता है।' उसका यह कहना भी व्यंग्य ही था। मेरा क्रोध गीली लकड़ी-सा न बुझ सकने, न जल सकने की स्थिति में धुँधुआकर रह गया। दिन-भर यही होता रहता है। मैं अपनी भावना के क्षणों को जी ही नहीं पाता। मैं नहीं रह सकता जैसे ये रहते हैं - अच्छी पगड़ी बँध जाए तो उसे गरमी में बसंत नजर आने लगता है, पॉलिश किए जूते में मुँह दिख जाए तो उसे ब्रम्हा दर्शन का-सा आध्यात्मिक सुख मिल जाता है, कपड़ों को ब्रश से साफ करके इतने संतोष के साथ वह तो जाता है जैसे संसार का कोई सबसे महत्वपूर्ण काम कर लिया हो उसने। ये जैसा कहते हैं या करते हैं वैसा नहीं कर सकता मैं कि अपने लैंप पर से शेड हटा दूँ।

मैं ठहरा नहीं, नहीं ही ठहरा, एकदम चल दिया। मुझे जाते देख वे तीनों गैलरी में खड़े हँस पड़े। एक बोला, 'हम तुम्हारे टेबिल-लैंप का शेड निकालकर फेंक देंगे।' मैंने घूमकर जोर से कहा, 'अगर ऐसा करने की बदतमीजी की तो मुझ जैसा बुरा न होगा कोई।' और मैं सोडा-वाटर की बॉटल में गैस के बंद किए जाने की-सी परेशानी महसूस करता चल दिया।

सच ही, मैं रोज दिनों से जल्दी वहाँ जा पहुँचा। चाय के खोके से बना यह आश्रम हम लोगों को बहुत प्यारा लगता है। हम लोगों से मेरा मतलब हम चार से ही नहीं, इस शहर में रहने आए उन सबसे है जिनकी यहाँ नियुक्ति हुई है या जो ट्रांसफर होकर यहाँ आए हैं। मुझे इंदौर में ही किसी ने बतलाया था कि मोटर स्टैंड वाले महाराष्ट्रीयन लॉज में ही भोजन करना-खाना, घर जैसा मिलेगा और घर जैसा लगेगा भी।

मैं बैठा अंदर को देख रहा था कि कोई आए तो पूछूँ कि कितनी देर है? सब ही लगे थे अपने-अपने कामों में। उनका सारा परिवार ही खाना बनाने और खिलाने के किसी-न-किसी काम में जुटा रहता है। जो धोती और टोपी पहनते हैं वे हैं आश्रम के मालिक। दादा कहते हैं सब उनको। हाँ तो दादा, दादा की पत्नी, दादा की माँ उनकी ताई, उनके दो लड़के ओर तीनों लड़कियाँ कुल जाने कितने हुए, ये सब आश्रम का भोजनालय चलाते हैं।

बैठे-बैठे बोर होने लगा तो पुकारा, 'दादा!' दादा नहीं थे या किसी काम में लगे थे। किसी ने कोई उत्तर नहीं दिया। दीवार पर टँगे कैलेंडर्स पर बने देवताओं को देखने लगा। आगरा-बाम्बे रोड है न और इंदौर-ग्वालियर के बीच यही सबसे बड़ा शहर है। तो सभी कंपनियों के एजेंट यहाँ आया करते हैं, आते हैं तो दादा के आश्रम में खाना खाते है और अपना कैलेंडर दे जाते हैं इसी से दीवार के इंच-इंच पर कैलेंडर लगे है। मैं पहले

दिन आया था तो बड़ा अजीब-सा लगा था, कैसा अजीब-सा घर, यूँ लगा जैसे परिवार के सब लोगों ने ही मिलकर इसे बना लिया है। नया-नया आया तो कोने में जा बैठा। सब खाने-बतियाने में लगे थे। एक इकहरे बदन की लड़की आई ओर पूछा, 'काय पाहिजे?' मैं उसका चेहरा देखता रह गया। तभी कॉलेज के दूसरे दोस्त आ गए ओर उन्होंने दादा से मेरा परिचय करवा दिया। कहा, 'आज से यह भी।' दादा खुश हुए और उसी इकहरे बदन वाली से बोले, 'जा ग टाट वाढ़।'

मैं उनका मराठी बोलना बिलकुल बुद्‌धू की तरह सुन रहा था, लड़की यह समझ गई, खुद ही मुसकराई और बोली, 'ये कह रहे हैं, जा थाली लगा दे।'

'समझा।' मैं मुसकरा दिया और दादा का कहा वाक्य दोहरा दिया, 'जा ग टाट बाढ़।' मेरे बोलने से आश्रम के सभी बड़े जोर से हँसे। इकहरे बदन वाली बोली, 'बाढ़ नहीं वाढ़।'

'बाढ़?'

'नहीं, वाढ़।'

'वाढ़, वाढ़...वाढ़...' मैं उसी एक शब्द को बार-बार बोलने लगा तो वह फिर हँसी, 'आप बार-बार क्यूँ बाल रहे हैं?' मैं चुप हो गया और कहा, 'कुछ दिनों में सीख जाऊँगा मराठी।'

वह इकहरे बदन वाली जाती हुई बोली, 'हाँ, मैं सिखा दूँगी।'

खाना आया। खाना शुरू किया। खाना आता रहा हम खाते रहे।

आश्रम में गिलास दो तरह के हैं, सफेद और नीले। एक दिन वह नीला गिलास मेरे पास रख गई। मैं घबराकर बोला, 'यह नहीं?'

'का?' मराठी सिखाने वाली इकहरे बदन की लड़की ने पूछा।

'नीले गिलास में पानी भर दो तो यूँ लगता है जैसे नीली दवाई भरी हो उसमें - और मैं दवाई पीना पसंद नहीं करता।' इतना कहते मैंने उसके हाथ से सफद गिलास ले लिया वह हँस दी। तब से रोज वह दो तरह के गिलास लेकर ही मेरे पास आती है। सफेद गिलास मुझे दिखाती है और मैं हाथ बढ़ाता हूँ तो वह नीला गिलास मेरी ओर कर देती है। मैं हलकी-सी नाराजी बतलाता हूँ तो वह सफेद गिलास मुझे देने को होती है, मैं हाथ बढ़ाता हूँ तो वह फिर नीला गिलास मेरे सामने रख देती हैं मैं सच ही नाराज

होकर कहता हूँ, 'हे काय लावना आहेत?' मेरे इस वाक्य को सुन वह भारी अचरज में डूब जाती है, 'अरे आप तो इतनी अच्छी मराठी बोलने लगे? कहाँ सीखी?'

'कल आप ही तो छोटे बाबा को डाँटती हुई यह वाक्य बोली थीं।' मैं इतने में सफेद वाला गिलास अपनी दसों उँगलियों में बाँध लेता हूँ। फिर वह इतना कहती चली जाती है, 'तो चुरा लिया हमारा वाक्य अपने?'

डन दिनों सर्दी तेज थी पर थाली में दही रोज आता। मैंने उससे कह दिया, 'मैं यह खाऊँगा तो जुकाम हो जाएगा।'

'बर-अ, उद्या पासून नाहीं देणार।' और दूसरे दिन से मेरी थाली अलग होती।

सुबह सच ही खाना खाने में बड़ा मजा आता। कॉलेज छूटने पर हम सब इकट्ठे जा पहुँचते वहाँ। मरठी सिखाने वाली इकहरे बदन की लड़की मेरी थाली पढ़ा जाती मुझे, 'हीं आहे वांग्याची भाजी, ही बटाठची, हा आहेत वरण, ही चटनी, हा मीठ, ही पोलीं' मैं खाना खाते-खाते मराठी के एक-एक, दो-दो नए शब्द सीख लेता। बैंगन की सब्जी चाहिए तो मैं जोर से बोलता, 'बटाटा की भाजीं' लड़की हँसती, कहती, 'वांगे म्हणजे बैंगन अणखिण बटाटे मृणजे आलू।'

मैं फिर रटाई में लग जाता। एक दिन उसने थाली मेरे सामने रखी कि पास वाले दोस्त ने थाली खींच ली, 'मुझे बड़ी जोर से भूख लगी है।' मराठी सिखाने वाली इकहरे बदन की लड़की ने थाली उसके सामने से उठा मेरे सामने रख दी पर उसने थाली फिर छीन ली, मैंने उज्र भी नहीं किया। हाथ धो रहा था तो मराठी सिखाने वाली इकहरे बदन की लड़की बतलाया, 'तुमचे वरण मधे दीढ़ चम्मच तूप असतो।' फिर समझाती हुई बोली, 'तुमी एकदा सांगितला होते न?'

मुश्किल थी शाम के खाने की। सुबह तो खाना अच्छा ही बनता था क्योंकि पुलमेन के कई मुसाफिर आते थे पर शाम का खाना..., बस, खा ही लेते थे। मैंने कहा एक दिन, 'मुझे एक चम्मच शक्कर और प्याज चाहिए। शाम को खाना अच्छा नहीं लगता।' मराठी सिखाने वाली इकहरे बदन की लड़की कुछ बोली नहीं, शक्कर लाई, प्याज लाई और जो रोटियाँ मुझे दीं वे कुछ अधिक सिंकी हुई कड़क थीं, मुझे अच्छी लगीं ओर उस दिन से शाम का खाना भी कुछ ठीक लगने लगा।

एक शाम तेज सर्दी थी शायद। खाना खा हाथ धोने जा रहा था कि मराठी सिखाने वाली इकहरे बदन की लड़की बोली, 'ठहरो जरा' वह अंदर गई और बालटी-भर गरम पानी लाई - 'थंडी फार आहेत। है ध्या।' और मेरे हाथ पर गरम पानी डालने लगी वह।

ये ही सब बातें हैं कि मुझे खाना खाने की जल्दी पड़ी रहती है। आता हूँ और रोज-रोज वही-का-वही दोहराया जाता है, नीले-सफेद गिलासों की छीना झपटी, वरण में डेढ़ चम्चच तूप, बटाटे और वांगे की भाजी, एक चम्मच शक्कर, कटा हुआ प्याज, मीठ, कोशिम्बीर, गरम पानी... और मुझे मराठी सिखाने वाली इकहरे बदन की लड़की।

पर आज सबके सब गायब हैं। मैंने फिर पुकारा, 'दादा!'

इस बार दादा आ गए। बोले, 'अभी तो आध घंटे की देर है।' मैं उठा और घूमने लगा। बसें आ-जा रही थीं। बस के पास से गुजरा तो ऐसा लगा जैसे मराठी सिखाने वाली इकहरे बदन की लड़की उसमें बैठी है। पास जा देखा तो वह नहीं थी - वैसी ही दिखने वाली कोई और लड़की थी। मुझे उसकी याद आती है तो उसका थाली लिए या सब्जी की पतीली हाथ में लिए आना ही याद आता है। बड़ी जल्दी-जल्दी आती-जाती है। जैसे सरकस में एक आयटम के बाद दूसरी आयटम कैसी फुरती से शुरू हो जाती है वैसे ही अभी लाई वह भाजी और अभी ले आई दाल।

एकाध महीने पहले की बात है कि हम चारों एकरात आपस में झगड़ पड़े थे। बात, न बात का ना, जिस कमरे में हम चारों की चारपाइयाँ हैं उसका बल्व फ्यूज हो गया था। बल्ब बीच छत में लटाक था-साठ का था या अस्सी का, राम जाने पर उजाले कमरे-भर में होता था। हाँ, मेरे पास एक टेबिल-लैंप था। मैंने अपने सिरहाने अपनी दोनों पेटियों पर वह लैंप रख दिया था। उसका शेड मेरी तरफ था - उस सारे उजाले का अकेला मैं ही अधिकारी था। बेडस्विच को मैं खींचकर अपने तकिए के नीचे ले आया था - यह इसलिए कि रात में पढ़ते-पढ़ते सोने की मेरी आदत है और लैंप बुझाने को मसहरी से बाहर हाथ निकालते कष्ट तो होता ही है, मच्छर भी अंदर घुस आते है। उस सारे उजाले में मसहरी के कपड़े की छेदवाली छाया बड़ी प्यारी लगती है। सामने के खुले दरवाजे से रैलिंग के ऊपर चाँद और उसी पर हिलने वाले बकायन के पेड़ की ऊँची फुनगी जिस रात दिख जाती उस रात मुझे नींद नहीं आती। स्विच ऑफ कर देता हूँ तो चाँदनी का एक डिजाइन मसहरी पार कर मेरे पास आ जाता है और पूछता है, 'वांग्याची भाजी पाहिये?' मुझे मन-ही-मन हँसी आ जाती है।

हाँ, झगड़ा इस बात पर हुआ कि वे तीनों चाहते थे - मैं अपने टेबिल-लैंप पर से शेड निकाल दूँ जिससे सारे कमरे में, सब पर उजेला फैले। मैं जिद पर आ गया, 'नहीं, यह

मेरा अपना उजेला है, इस पर शेड लगा ही रहेगा और केवल मुझ पर ही उजेला होगा।' उन तीनों ने कई बार मेरे लैंप का शेड निकाल फेंका पर मैंने फिर-फिर उस पर शेड लगा दिया। अंत में झगड़ा इस बात पर निबटा कि कमरे में अँधेरा हो, उजेला हो ही नहीं, मैंने बात मान ली और वह लैंप बुझा दिया - चाँद बड़ा प्यारा लग रहा था। जब चश्मा उतार दो तब और भी प्यारा लगता है, वह कुछ बड़ा दिखता है और चाँदनी का रंग दूधिया हो जाता है। मैं झगड़े की बात भूल गया पर सुबह चारेक बजे आँख खुलों तो देखा लैंप जल रहा था - किसने जलाया? स्विच तो मेरे तकिए के नीचे है, लैंप पर शेड भी लगा है ओर केवल मुझ पर उजेला हो रहा है।... यह सोचकर मुझे हँसी आई कि किसी सपने में मैंने लैंप जला दिया होगा। मैंने लैंप को जलता ही छोड़ दिया। मैं खुश था कि यह उजेला केवल मेरा अपना है और कुद चीजें अपनी होती भी तो हैं - अब मराठी सिखाने वाली इकहरे बदन की लड़की केवल मेरा ही ध्यान रखे तो कोई क्या करे? वह मुझे सफेद गिलास दे, मेरी थाली अलग से लगाकर ला दे, शाम के खाने में एक चम्मच शक्कर रख दे, हाथ धोने को गरम पानी दे दे तो और मेरे लैंप की रोशनी केवल मुझे ही मिले तो? मराठी सिखाने वाली इकहरे बदन की लड़की और अपने टेबिल-लैंप पर बड़ा स्नेह उमड़ता रहा। उस लैंप की खास लंबाई-चौड़ाई की रोशनी को मैं शेष सारी रात महसूस करता रहा। तब से हम चारों में बोल-चाल तो होती है पर व्यंग्यों में, कोई सीधे से बात नहीं करता।

एक दिन वह सब्जी देने आई तो पूछा, 'बटाटे की भाजी पाहिजे काका?' उसके प्रश्न से अधिक महत्वपूर्ण था उसका संबोधन। मेरे मित्रों ने आपस में एक-दूसरे को देखा। वह उनसे भी 'काका' बोली, सबसे 'काका' बोल रही थी। जब उने फिर मुझसे कुछ पूछा और 'काका' के संबोधन के साथ, तो दादा ने उसे शाबाशी दी और उससे बोले, 'अब ठीक है।' फिर हमसे कहने लगे, 'आप सब क्षमा करना। बच्चे मेनर ही नहीं जानते। किसी को चश्मे वाले बाबूजो कहते हें, किसी को खादी वाले नेताजी। मैंने अब इनको समझा दिया है कि ये सबको 'काका' कहें।'

उस समय चबाए जा रहे एक कौन ने बत्तीसी और गले की खूब परिक्रमा की, वह मुँह का मुँह में घूमता रहा। पर मराठी-सिखाने वाली इकहरे बदन की लड़की के व्यवहार में फर्क नहीं आया, रोज-रोज वही दोहराया जाता - नीले-सफेद गिलासों की छीना-झपटी, वरण में डेढ़ चम्मच तूप, बटाटे और वांगे की भाजी, एक चम्मच शक्कर, कटा हुआ प्याज, मीठ, कोशिम्बीर, गरम पानी... और 'काका'।

मैंने अंदाज लगाया कि आधा घंटा हो गया होगा और आश्रम चला गया। दो-चार कोई मुसाफिर खाना खा रहे थे। मैं मराठी सिखाने वाली इकहरे बदन की लड़की की राह

देखने लगा कि वह आए और थाली लगाए मेरे लिए। जाने क्या हुआ उसे, कि थाली लेकर आई फ्रॉक वाली छोटी लड़की। मैंने कुछ पूछा नहीं उसके बारे में। थाली मेरे सामने थी, पर मैं चौंका, उसमें दही था (शायद मराठी सिखाने वाली वह इकहरे बदन की लड़की कहीं गई है) उस थाली में एक चम्मच मिर्ची भी थी (निश्चित कि वह लड़की यहाँ नहीं है), दाल में घी भी नहीं है, (वह कहीं चली गई होगी)। मैंने सोचा - एक दिन किसी के न होने से कितना फर्क पड़ गया। वह फ्रॉक वाली छोटी लड़की गिलास दे गई तो वह भी नीला, जिसमें भरा पानी दवाई-सा लगता है। मैं थाली पर झुका रहा, मैंने एक कौर भी नहीं तोड़ा - मुझे लग रहा था कि मराठी सिखाने वाली वह लड़की आएगी और कहेगी, 'काका, गलती हो गई, दूसरी थाली आपको दे दी।' वह तो नहीं आई, पर फ्रॉक वाली छोटी लड़की ने आकर कहा, 'काका गलती हो गई आप तो चश्मे वाले काका हैं, मैं खादी वाले काका की थाली ले आई।' ओर उसने एकदम थाली बदल दी, 'ये लो, इसमें दही नहीं है, वरण में डेढ़ चम्मच घी है।' मैंने कुछ देर चुप रहकर पूछा, 'पर तुम्हें क्या मालूम यह सब? तुम तो अंदर रहती हो, तुम तो कभी खाना परोसने भी नहीं आतीं?'

वह मेरा गिलास बदलती बोली, 'ताई (बहन) सामा के घर खांदेश गई है तो मेरे को सब बता गई है। अब बीस लोग आते हैं ना रोज तो बीस थाली की अलग-अलग बातें बताई हें उसने। चश्मे वाले काका को दही मत देना, खादी वाले काका को मिर्ची देना, दाढ़ी वाले काका के वरण में ऊपर से फोड़नी लगा देना, टाई वाले काका को कड़क रोटी देना, अणखिण कुरते वाले काका की थाली में भोत सारा मीठ रख देना...।' वह बोलती ही गई जितने ग्राहक उतनी इच्छाएँ। मुझे लगा कि यहाँ आने वाला हर एक आदमी खाना खाने आधा घंटा जल्दी आ जाता है। शायद हर एक से मसहरी में आने वाला चाँदनी का डिजाइन यही पूछता है, 'बांग्याची भाजी पाहिज?'

फ्रॉक वाली छोटी लड़की बहुत व्यस्त हो गई और भीड़-के-भीड़ लोग खाने की मेज पर आ बैठे। मैं दिन-भर जाने किस काम में लगा रहा। अँधेरा घिरा तो लैंप जलाया। एक खास लंबाई-चौड़ाई की रोशनी मेरे बिस्तर पर छा गई, पर यह रोशनी मराठी सिखाने वाली इकहरे बदन की उस लड़की के समान नहीं लगी क्योंकि यह रोशनी केवल मेरी सेवा करती है ओर वह सब की। यह रोशनी केवल मेरे गिर्द है ओर वह सब के पास। मैंने लैंप का शेड निकाल दिया निकाला ही नहीं, निकालकर बाहर सड़क पर फेंक दिया ब्रश करने वाले, पॉलिश करने वाले, पगड़ी बाँधने वाले वे तीनों दोस्त आश्चर्य से मेरी तरफ देखने लगे। पूछा, 'यह क्या?'

मैं इतना ही बोला, 'रोशनी किसी की बपौती नहीं होती।'

https://www.hindiadda.com/bagair-shed-vale-balb-ki-roshani/